International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)

E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

# संस्कृत - साहित्य में नाटक का उद्भव एवं विकास

Ms. Shweta Kumari

Sanskrit

## सारांश

नाटक संस्कृत की प्राचीन सशक्त एवं प्रभावशाली विधाओं में से एक सर्वाधिक लोकप्रिय विधा रही है। नाटक और मानव जीवन का संबंध शाश्वत रहा है। हमारे सम्मुख वर्तमान संसार एक रंगमंच है जिस समंच के हम किसी न किसी रूप में पात्र है। यहाँ पर कोई विद्यार्थी की भूमिका निभा रहे है कोई अध्यापक की तो कोई माता- पिता और भाई- बहन की भूमिका निभा रहे है। हम सब को ईश्वर ने एक जिम्मेदारी दे रखी है जिसको कोई किसी पात्र रूप में तो कोई किसी पात्र रूप में निभा रहा है। सामान्य रूप से राब्दों तथा पात्रों की आकृति (शारीरिक बनावट। वेश भूषा भाव– भंगिमा, क्रियाओं के अनुकरण और भावों के अनुरूप अभिनय तथा प्रदर्शन के माध्यम से यथार्थ जीवन को प्रकट करने की कला ही नाटक है। नाटक के लिए संस्कृत साहित्य मे नाट्य नाटक. रूपक रंगकर्म–रंगमंच आदि प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

## प्रस्तावना

**नाटक का इतिहास एवं प्रारम्भ** – भारतीय परम्परा के अनुसार नाटक की उत्पत्ति त्रेता युग में ब्रह्मा जी द्वारा हुई। ब्रह्मा ने ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद के आधार पर ही नाटयवेद की रचना की होगी। नाट्यवेद को ही पञ्चम वेद कहा गया है। जिसमें ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीति, यजुर्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस लेकर ही 'नाटयवेद' रुप - पञ्चम वेद की रचना की होगी। ब्रह्मा जी को प्रेरणा से ही विश्वकर्मा ने नाटय गृह की रचना की और भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र की रचना की, नाट्यकला को पूर्ण बनाने के लिए भगवान शिव, ने नाटय के साथ ताण्डव का और माँ पार्वती ने लास्य का समावेश कर दिया। इस प्रकार भारतीय परम्परा में नाटक की उत्पत्ति को दैवी परम्परा माना जाता है। नाटय में संवाद और अभिनय को ही प्रधान माना जाता है तथा भारत के प्राचीनतम् वेद ऋग्वेद में संवाद के स्थल है, जिन्हें संस्कृत नाटकों का मूल कहा गया है।

**एवं संकल्पय भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन् ।"**
**नाट्यवेद ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसंभवम् ॥**
**जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।**
**यजुर्वेदादभिनयान् रसानार्थवणादपि ॥**[2]

**नाटक का महत्व -** वर्तमान समय में जो नाट्य कला का महत्व: इसकी महिमा एवं उसका विकास दिखाई दे रहा है. उसमें किसी न किसी रूप में प्राचीन नाटय यात्रा की भूमिका आवश्यकता रही है। भारतीय नाटक के महत्व, उसके उद्भव और विकास की यात्रा में भरतमुनि के कथन को सर्वाधिक महत्वता प्रदान की गयी है। उन्होंने नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में लिखा है कि मर्त्यलोक के लोगों को उदास देखकर इन्द्र आदि देवताओं ने सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी के पास जाकर ऐसे वेद की रचना करने को कहा जिससे लोगों के अंदर विधमान आलस्य मानसिक तनाव व शारीरिक थकान दूर हो और जिसे देखकर लोग चिन्तारहित एवं आनन्दमय हो जायें।

अत: भारतीय नाट्य परम्परा सर्वदा सुखान्त नाटकों के रूप में सहदयो को रसास्वादन करवाने वाला है। संस्कृत के साहित्यशास्त्रियों ने काव्य के दो स्वरूप बतलाए है। दृश्य काव्य एवं श्रव्य काव्य ।

**दृश्यश्रव्यत्व भेदेन पुनः काव्य द्विधामतम् ।**
**दृश्य तत्राभिनेय तद्रुपारोपान्तु रूपकम् ॥3**

इनमें से दृश्य काव्य में रुपकों तथा उपरूपकों का ग्रहण होता है। क्योंकि इनका अभिनय किया जाता है। ये सहृदय दर्शकों द्वारा दृश्य होते हैं। हृश्य काव्य (नाटक) में अभिनेता अभिनय के रूप में अपने पात्र को बतलाता है। इसलिए नाटक को 'रुपक' कहा गया है। रूपक के ही दस भेदों में एक नाटक भी है। यथा-

**नाटकमथ प्रकरण भ्राणव्यायोग समवकारडिमा: ।**
**ईहामृगाड्.कवीथ्य: प्रहसनमिति रूपकाणि दश ॥4**

1ए नाटक,
2ए प्रकरण,
3ए भाण,
4ए **व्यायोग,**
5ए समवकार,
6ए डिम,
7ए ईहामृग,
8ए अंक,
9ए वीथी तथा
10ए प्रहसन

श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य अधिक जनप्रिय माने जाते हैं। क्योंकि हृश्य काव्य में मनोरंजन भावाभिव्यक्ति, हृदयग्राहिता एवं आकर्षण अधिक होता है। क्योंकि वे अभिनय द्वारा दिखाई जाते हो जबकि श्रव्य काव्य केवल श्रवण के विषय होते है। नाटकों में बहुत सी ऐसी विशेषताएँ होती हैं जिससे मानव प्रेरणा के साथ रसास्वादन भी ग्रहण करता है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाटकों की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहा है कि नाटक में ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, क्रिया, कुशलता आदि का समन्वय रहता है।

## संस्कृत नाटक परम्परा

संस्कृत नाट्य परम्परा का जब सवाल आता है, नाट्यशास्त्र ग्रन्थ के आधार पर संस्कृत के कई नाटककार सामने आयें जिनमें महाकवि भास, कालिदास, अश्वघोष, हर्षवर्धन, भवभूति, विशाखादत्त आदि प्रमुख है। महाकवि भास द्वारा रचित तेरह रूपक के कारण संस्कृत नाटय परम्परा में भास का महत्वपूर्ण योगदान माना गया है। उनके सारे नाटक महाभारत रामायण और कल्पना के आधार पर रचे गये हैं। महाभारत पर आधारित रूपकों में मध्यम व्यायोग, 'कर्णभार', दूतघटोत्कच, उरुभंग, पंचरात्र, दूतवाक्य, बालचरित का समावेश है। रामायण के आधार पर रचित नाटकों में प्रतिमानाटक, और अभिषेक नाटक आते हैं। जबकि काल्पनिक रूपकों में अविमारक, दरिद्रचारुदत्त, प्रतिज्ञायोगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्तम् आदि नाटकों का समावेश है। भास के बाद संस्कृत नाटक परम्परा में शूद्रक का नाम आता है। उनकी एक ही कृति है- 'मृच्छकटिकम्' । 'मृच्छकटिकम्' अपने ढंग की एक अनूठी रचना है। उसके महत्व को प्रतिपादित करते हुए लक्ष्मीनारायण लाल लिखते हैं कि 'मृच्छकटिकम्' बहुत ही उच्च कोटि की रचना है। इसमें व्याप्त कथातत्व, घटनाचक्र, कार्य, उसकी गति और नाट्य व्यापार इस सत्य को पूर्णरूप से बताते हैं कि संस्कृत रंगमंच की प्रकृति और परम्परा क्या थी। शूद्रक के बाद महाकवि कालिदास का नाम महत्वपूर्ण है। कालिदास के नाटकों की मंचीयता को लेकर डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल का कहना है कि "संस्कृत रंगमंच का संपूर्ण भावबोध, अर्थबोध, इनके नाटकों में मिला है, महाकवि कालिदास का प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञानशांकुन्तलम्' में काव्य, अभिनय, रंग थे तीनों तत्व

इस नाटक में देखने को मिलते है। कालिदास के बाद विशाखादत्त द्वारा रचित नाटक 'मुद्राराक्षक' भी संस्कृत नाटक परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। संस्कृत नाटक परम्परा में अन्तिम और महत्वपूर्ण नाटककार भवभूति है, जिसने नाट्यकला में, 'उत्तर रामचरित' के माध्यम से नयी दिशा प्रदान की है। इनके तीन नाटक प्रमुख है- मालतीमाधव, महावीरचरित, उत्तररामचरित। भवभूति के साथ ही नाटक की विकास यात्रा का स्वर्णयुग समाप्त हो जाता है। अंतिम चरण में कई नाटक लिखे गये, उनमें राजशेखर का 'बालरामायण' और जयदेव का 'प्रसन्नराघव' सम्मिलित है। संस्कृत नाटक परम्परा जिसके कालान्तर में नाटककार हुए भास, अश्वघोष, कालिदास और भवभूति आदि।

**निष्कर्ष** – उपर्युक्त तथ्यों एवं विविध पक्षों के आधार पर कहा जा सकता है। कि नाटक को देखकर, सुनकर सभी प्रकार के रसों की अनुभूति की जा सकती है। रसास्वादन, मनोरंजन व नवीन चिन्तन विकास के कारण ही नाटकों की लोकप्रियता में वृद्धि होती जा रही है। और मैं परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करती हूँ एक रूपक और मानव का यह संग प्रवाह अबाध गति से प्रवाहित होती रहे और यह विश्व नित्य नाटक विधा से शुद्ध चेतन्य धारण कर जीवन रूपी डगर में अपनी भूमिका का निर्वहण करता रहे।

**संदर्भ ग्रंथ सूची**

1ण दशरूपकम्, धनञ्जय – 1
2ण दशरूपकम्, धनञ्जय- 21
3ण दशरूपकम्, धनञ्जय – 24, 25
4ण नाट्यशास्त्र, भरतमुनि – 1,16
5ण नाट्यशास्त्र, भरतमुनि. 1,17
6ण नाट्यशास्त्र, भरतमुनि 1,16
7ण रंगमंच और नाटक की भूमिका, लक्ष्मीनारायण लाल पृ.84 ।
8ण रंगमंच और नाटक की भूमिका, लक्ष्मीनारायण लाल पृ. 84 ।